PAIRVI OCCASIONAL PAPER SERIES

April 2010

खाद्य सुरक्षा का गहराता संकट

– अजय के. झा

जल्दी ही भारत के पास 6 करोड़ टन का खाद्यान्न भण्डार हो जाएगा। इतना बड़ा भण्डार होने के बावजूद भी देश के कई राज्यों में भूख से मौतें हो रही हैं जो इस बात की पुष्टि करती हैं कि सरकार के द्वारा घोषित भण्डारण व स्थिति से निपटने के लिए लागू की गई सारी योजनाओं के पीछे का सच क्या है। भारत में आज भी 36 करोड़ व्यक्ति कुपोषित हैं और 30 करोड़ ग़रीब। वर्ष 1996–2008 के बीच अनाज उत्पादन में 1.2 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई जबकि एक दशक पूर्व 1980 में यह वृद्धि दर इससे तीन गुना ज़्यादा 3.5 प्रतिषत थी। आज 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों में से 42.5 प्रतिशत कुपोषित हैं, और 3 वर्ष से कम आयु के बच्चों में से 42 प्रतिशत कुपोषण के शिकार हैं। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि पिछले एक दशक में कुपोषित बच्चों की संख्या में मात्र 1 प्रतिशत (1999 में 47 प्रतिशत से लेकर 2009 में 46 प्रतिशत) की गिरावट आई है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान (आईएफपीआरआई) वाशिंगटन द्वारा बनाए गए ग्लोबल हंगर इण्डैक्स (2008) में 88 देशों की तालिका में भारत का स्थान 66वां है। भारत के दस से अधिक राज्य खाद्य असुरक्षा की दृष्टि से गंभीर पाए गए हैं, इनमें गुजरात जैसे अपेक्षाकृत संपन्न राज्य भी हैं। मध्यप्रदेश की स्थिति तो अत्यंत गंभीर पाई गई है। भारत के कई राज्य रवाण्डा, बुरुण्डी जैसे ग़रीब देशों की पंक्ति में हैं जिससे आसानी से हमारी खाद्य (अ)सुरक्षा का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

एक ही इलाके में समृद्धि एवं भुखमरी का एक साथ होना यह सवाल खड़ा करता है कि खाद्य सुरक्षा को लेकर हमारे दृष्टिकोण में कहीं कुछ मौलिक गड़बड़ी तो नहीं। जवाब स्पष्ट है – हाँ। समस्या की समझ में कमी और अस्पष्टता के कारण ऐसी भ्रामक स्थिति पैदा हो गई है जो समुचित प्रयासों को रोक रही है। खाद्य सुरक्षा के प्रयास केवल ग़रीबी को परिभाषित करने और ग़रीबों को चिन्हित करने तक सीमित होकर रह गए हैं। ज़ाहिर है कि भारत में ग़रीबी

रेखा की परिभाषा बेहद चिंताजनक है, जिसके तहत अगर कोई व्यक्ति शहर में 20 रुपये से ज़्यादा कमाता है तो वह 'अमीर' है! ग़रीबी के आंकलन में भी भारी विविधता देखी गई है और यह कभी 9.25 करोड़ (तेंदुलकर कमिटी) तो कभी 20 करोड़ (वाधवा कमिटी) हो जाती है। इस तरह ग़रीबी को तय करने की इस आधार रेखा पर बात करना इस मुद्दे से निपटने के लिए बेहद महत्वपूर्ण है, जिसके किये बिना परिणाम की अपेक्षा रखना अर्थहीन है। दूसरी तरफ खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में किये जा रहे प्रयासों में कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु छूट रहे हैं – जैसे कि साफ पानी की सुविधा, मौलिक स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच, पौष्टिक आहार व साफ–सफाई। खाद्य सुरक्षा की अवधारणा में खाद्य के साथ–साथ इन ग़ैर–खाद्य घटकों की भी अहम भूमिका है। खाद्य सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पहलू जैसे खाद्य अधिकारिता बिल, जी.एम. फूड व जलवायु परिवर्तन काफी चर्चा में रहे हैं और इनमें एक बारीक विश्लेषण लाज़िमी होगा।

खाद्य अधिकारिता कानून

संप्रग सरकार ने अपने साझा न्यूनतम कार्यक्रम में खाद्य सुरक्षा कानून बनाने का वादा किया था। बजट उद्‌बोधन के दौरान प्रधानमंत्री ने बयान दिया कि इस कानून का प्रारूप बनकर तैयार है। हालांकि यह प्रारूप अभी भी जनता के बीच में आना बाकी है। कई क़यास और चर्चाऐं नागरिक आपूर्ति व उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय द्वारा ज़ारी किए गए अवधारणा–पत्र के इर्द–गिर्द हो रही हैं। यदि यह अवधारणा–पत्र ही इस कानून का अधार है और अगर मीडिया के लेखों का विश्वास किया जाए तो यह बिल वास्तविकता में खाद्य ''असुरक्षा'' बिल कहलाएगा। खाद्य अधिकारिता का विचार स्वागत योग्य है परन्तु जिस प्रकार से इसे पेश किया गया है वह मात्र औपचारिकता पूरी करता है। खाद्य सुरक्षा के नाम पर यह फिर से जनवितरण प्रणाली के पुनर्निर्माण की बात करता है जिसे पहले भी कई बार तोड़ा–मरोड़ा जा चुका है। सुप्रीम कोर्ट के आदेशानुसार इस समय बीपीएल परिवारों को 2 रुपये किलो की दर से 35 किलो खाद्यान्न प्राप्त हो रहा है। नया बिल 3 रुपये की दर पर सिर्फ 25 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराने की बात करता है। 25 किलो अनाज में एक परिवार कितने दिनों तक अपनी भूख मिटाएगा। आईसीएमआर के अनुसार एक परिवार को महीने भर में कम से कम 48 किलो अनाज की ज़रूरत होती है और सरकार अपने नए कानून में इसका बिल्कुल आधा अनाज देने की बात कर रही है। यह यहीं तक सीमित नहीं है, इस कानून में एक और बात काफी चिंताजनक है। सरकार की रणनीति के अनुसार खाद्यान्न की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अनाज के आयात की बात कही गई है। खाद्यान्न में आत्म–निर्भर बनने के प्रयास घुटने

टेकते नज़र आ रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि एक तरफ जहाँ ग़रीबी रेखा से नीचे जनसंख्या का आंकलन लगातार बढ़ रहा है वहीं सरकार इस कानून के तहत मात्र 6.5 करोड़ लोगों को लाभ पहुँचाने की बात कर रही है। साथ ही यह कानून बाकी सारे कार्यक्रम – जैसे काम के लिए अनाज व अन्य ऐसे कार्यक्रम जिन्हें राज्य सरकार अपने ख़र्चे से चलाती हैं – को बंद करने की बात करता है। इस कानून में सिर्फ गेहूँ व चावल देने की बात कही जा रही है जबकि बढ़ती मंहगाई ने पहले से ही दाल, तेल, कैरोसिन और नमक की कीमतों को ग़रीबों की क्रय क्षमता से ऊपर पहुँचा दिया है।

सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिष्चित करने के लिए यह बिल अनाज के आयात की बात करता है न कि खाद्यान्न में आत्म–निर्भर होने की। जो एक बात इस कानून में अच्छी है वह यह है कि अगर कोई परिवार अनाज प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो सरकार उसे असुरक्षा भत्ता देगी लेकिन भत्ता देने के लिए राज्य सरकारों पर जो दबाव पड़ेगा उस संदर्भ में मुश्किल ही लगता है कि यह प्रावधान कभी क्रियान्वित हो पाएगा।

बी.टी. मरीचिका

हाल ही हुए बी.टी. बैंगन विवाद ने न केवल बी.टी. कम्पनियों की वैज्ञानिक शोध की तटस्थता की पोल–पट्टी खोली है बल्कि इस झूठे दावे को भी उजागर किया है कि जी.एम.फूड दुनिया से भूख को कम कर देगा। विज्ञान एवं पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने दबाव में आकर बी.टी. बैंगन के वाणिज्यिक उत्पादन को दो साल के लिए टाल तो दिया है लेकिन मंत्रिमण्डल में असंतोष और विविध राय के मद्देनज़र हम ज़्यादा ख़ुश नहीं हो सकते। भारत में कई राज्यों में विपक्षी दलों की सरकार है, उन्होंने अपने राज्यों में जी.एम.फूड पर रोक लगा रखी है लेकिन शायद यह राजनीतिक रणनीति का हिस्सा है न कि विज्ञान के प्रति उनकी निष्ठा व उपभोक्ता के भोजन के अधिकार का सम्मान। मुख्य सवाल तो यह है कि जब भारत में बैंगन की 2000 किस्में उपलब्ध हैं तो एक और नया बी.टी. बैंगन कयों? जवाब सवाल में निहित है। अधिक किस्मों का सीधा मतलब है कि देष में बैंगन पर निर्भरता अधिक है और यही बात कम्पनियों को बी.टी. बैंगन को बढ़ावा देने के लिए उत्साहित कर रही है। सिर्फ बैंगन ही नहीं देश में 30 से ज़्यादा बी.टी. सब्जियों पर शोध कार्य चल रहे हैं और इनके वाणिज्यिक उत्पादन की अनुमति बस कुछ ही समय की बात है।

जी.एम.फूड के संदर्भ में बी.टी. बैंगन ने कई सवाल खड़े किये हैं। इसमें सुरक्षा का सवाल सबसे पहला और अत्यंत गंभीर है। वैज्ञानिकों में सुरक्षा की दृष्टि से मतभेद है। खाद्य पदार्थ

या कॉटन में बी.टी. जींस के दूरगामी प्रभाव क्या होंगे इसका पूरा और सटीक रूप में अनुमान नहीं लगाया जा सकता। मानव 15 सालों से अधिक समय से जी.एम. भोज्य पदार्थों का सेवन कर रहा है मगर वैज्ञानिकों को आशंका है कि यह पता करने के लिए कि जी.एम.फूड का मानव, पशु व पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह समय पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त एक बड़ा सवाल जी.ई.ए.सी. की वैज्ञानिक क्षमता का भी है। जी.ई.ए.सी. में 30 सदस्य अलग–अलग विषयों से संबंध रखते हैं जिसमें से 9 सदस्य कार्यपालिका – जैसे कि विज्ञान व पर्यावरण मंत्रालय के अध्यक्ष व अतिरिक्त सचिव – से हैं। इसके अलावा अर्थशास्त्र, कृषि, जैव तकनीक, कानून, रसायन विज्ञान, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के विशेषज्ञ हैं। यह एक बहुविषयक प्रशासनिक समिति है, जो विशेषज्ञों से राय मांग सकती है। लेकिन इस राय पर आधारित निर्णयों पर हमेशा संदेह रहेगा। भारत में जैव–प्रौद्योगिकी नियमन तंत्र का सबसे मजेदार पहलू यह है कि जिस कंपनी का उत्पाद अनुमोदन के लिए आता है, उसे ही उसकी सुरक्षा और प्रामाणिकता पर शोध करने और साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा जाता है जो न्याय के सिद्धांतों के ख़िलाफ़ है। बी.टी. बैंगन पर यह रोक कार्टायेना प्रोटोकॉल के अहतियाती सिद्धांत के अनुरूप है जो जैव–प्रौद्योगिकी के स्थानान्तरण को नियंत्रित करता है। नामांकन (लेबलिंग) मुद्दे भी जी.एम. विवाद के केन्द्र में ज्ञात हो कि अमेरिका और कनाडा में नामांकन अनिवार्य नहीं है जबकि यूरोपियन यूनियन, जापान, मलेशिया और ऑस्ट्रलिया में यह आवश्यक है। भारत के पास प्रथक्करण और लेबलिंग की सुविधा मौजूद नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप भारत को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में अच्छा ख़ासा नुक़सान हो सकता है।

शायद यहाँ जैव प्रौद्योगिकी विनियामक प्राधिकरण पर चर्चा करना प्रासंगिक होगा। जल्द ही संसद में पेश किया जाने वाला यह विधेयक भारत और अमरीका के बीच हुए समझौते से प्रेरित है न कि कृषि सहयोग एवं खाद्य सुरक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए। भारत और अमरीका के बीच समझौते में एक महत्वपूर्ण हिस्सा भारत में अमरीकी कृषि उत्पाद को बढ़ावा देना है, जिसमें कई उत्पाद जेनेटिकली मॉडिफाइड होंगे। ऐसे में यह भारत में जी.एम. खाद्य के ढेर लगाने के द्वार खोल देगा। प्रस्तावित विधेयक में स्वीकृति के लिए जनभागीदारी का कोई प्रावधान नहीं है, यहाँ तक कि इस विधेयक में शोध, स्वीकृति एवं जी.एम. उत्पादों के विज्ञान को सूचना का अधिकार कानून से बाहर रखा गया है। इस विधेयक में प्रस्तावित तीन सदस्यीय विशेषज्ञ समिति को यह अधिकार होगा कि वह राज्य सरकार के किसी भी निर्णय को अनदेखा कर सकती है। इसके अलावा 'पुख़्ता सबूत या वैज्ञानिक तथ्यों' के बिना अगर कोई जीएमओ, डीएनए टीकों, जीन थैरेपी उत्पाद, स्टेम सेल उत्पाद या अन्य जी.एम. उत्पादों

के बारे में सवाल पूछता है या भ्रामक विचार प्रस्तुत करता है तो उसे इस विधेयक के अनुसार दण्डित करने का भी प्रावधान रखा गया है।

जलवायु परिवर्तन की चुनौती

जलवायु परिवर्तन दक्षिण एशिया के ग़रीब व विकासशील देशों में खाद्य सुरक्षा के लिए एक और गंभीर चुनौती है। भारत भी उन देशों में शामिल है जहाँ खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण, जैव–विविधता, ग़रीबी और आर्थिक विकास पर जलवायु परिवर्तन का बुरा प्रभाव पड़ेगा। अनुमान है कि तापमान में वृद्धि और वर्षा में कमी के कारण भारत में गेहूँ का उत्पादन लगभग एक तिहाई कम हो जाएगा। समुद्रतटीय क्षेत्रों में रहने वाली भारत की जनसंख्या भी जलवायु परिवर्तन से उपजी आपदाओं की बड़े पैमाने पर शिकार होगी। पहले से ही हमारे पास प्राकृतिक प्रकोप के समुचित उदाहरण मौजूद हैं। बदलती जलवायु परिस्थितियों के कारण अनाज के उत्पादन, जल उपलब्धता में कमी व स्वास्थ्य संबंधी ख़तरों पर गंभीर प्रभाव पड़ा है साथ ही उनकी संस्कृति व समाज भी प्रभावित हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कई महिलाओं का रोज़मर्रा का जीवन अव्यवस्थित हुआ है। वे नहीं जानतीं कि उन्हें क्या करना चाहिए क्योंकि खेत–खलिहानों में काम का ह्रास हुआ है। जल स्तर में कमी और विभिन्न पेड़ों के समाप्त हो जाने के कारण उन्हें जलाऊ लकड़ी और जल एकत्रित करने में पहले की तुलना में कहीं अधिक समय देना पड़ता है। अन्य विकसित देशों की तरह ही भारत के लिए भी जलवायु परिवर्तन की बहसों का केन्द्र बिन्दु कार्बन उत्सर्जन में कमी, ऊर्जा खपत और ऊर्जा के नवीनीकरण योग्य स्रोतों की तलाश बना हुआ है। कृषि व खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की चुनौतियों को न पहचान पाने की स्थिति बढ़ती जा रही जनसंख्या की सतत खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर हो सकती है। जबकि जलवायु परिवर्तन के बिना भी कृषि नीति (ख़ासकर छोटे किसानों संबंधी) में समुचित बदलाव की आवष्यकता है। इस तथ्य को स्वीकार करना कि भारत सहित अन्य दक्षिण एशियाई विकासशील देशों एवं अन्य कहीं भी सतत कृषि ही खाद्य सुरक्षा का केन्द्र बिन्दु है, जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में कृषि को बहस के प्रमुख मुद्दे के रूप में समाहित करने को अनिवार्य बनाता है। इस समय जबकि वर्षा कम हो रही है, कृषि के क्षेत्र में सबसे चिंताजनक तथ्य भारत में भूमिगत जल की दयनीय स्थिति है। भारत सरकार ने देश में एक तिहाई से अधिक विकास क्षेत्रों को भूमिगत जल रिक्तीकरण के संदर्भ में सीमा से अधिक दोहन की अर्द्ध–संकटपूर्ण व संकटपूर्ण श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। यह स्थिति मुख्यतः हरित क्रान्ति वाले क्षेत्रों में है।

कृषि और किसानों की सुरक्षा के बिना खाद्य सुरक्षा संभव नहीं

भारत में 65 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अभी भी कृषि पर खाद्य सुरक्षा और आजीविका के लिए निर्भर है। हरित क्रांति के बाद के दौर में कृषि की आधारभूत संरचना के विकास पर ध्यान न देना सबसे बड़ी नीतिगत असफलता रही है। नतीजतन पंजाब व हरियाणा जैसे राज्यों में भी कृषि और किसानों की दुर्दशा छिपी नहीं है। अगर भारत के राजनीतिज्ञ यह विश्वास करना चाहते हैं कि कृषि को सुधारे बिना भारत में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है तो यह एक बड़ी भूल होगी। अभी भी वक्त है कि हम कृषि की बहु–उपयोगी भूमिका को पहचानें। खाद्यान्न उत्पादन के आलावा ग्रामीण विकास, ग़रीबों व ग्रामीण क्षेत्रों में क्रय–शक्ति का विकास, खाद्य व जल सुरक्षा एवं जैव–विविधता सामाजिक व आर्थिक समानता सुनिश्चित कर सकती है। भूमि सुधार, ज़मीन, जल, जंगल व बीज पर कृषकों का अधिकार, सुलभ कृषि ऋण, कृषि विस्तार की सुविधाएँ और ग़ैर–कृषि रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना हमारे लिए प्राथमिकता हो तभी खाद्य सुरक्षा सुनिष्चित हो सकती है।

भारत में 70 प्रतिशत से अधिक कृषि वर्षा पर आधारित है, सूखे से निपट सकने वाले बीजों पर शोध व कृषि को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाने और ग़ैर कृषि अवसरों को बढ़ावा देकर छोटे व सीमांत किसानों सहित सभी किसानों की अनुकूलन क्षमता को बढ़ाने की कार्य–योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।